रूपकुण्ड-रहस्य

डी० एन० मजुमदार

उत्तर प्रदेश के गढ़वाल जिले में १७-१८ हजार फीट की ऊँचाई पर हिमालय की शृंखलाओं के मध्य स्थित हिमाच्छादित झील रूपकुण्ड के पास जो अस्थिढेर पाया गया वह हाल के वर्षों में सबसे अधिक रोमांचकारी और ऐतिहासिक महत्व की खोज थी। गढ़वाल के गज़ेटियरों में रूपकुण्ड का बिलकुल उल्लेख नहीं है यद्यपि उनमें इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का विशद वर्णन है। यह क्षेत्र नन्दा देवी के शिखरों से घिरा हुआ है। रूपकुण्ड में बारहों मास हिम जमा रहता है। इसका क्षेत्रफल लगभग एक एकड़, परिधि ५४० फीट और व्यास १६२ फीट है। इसका अधिकांश भाग बड़े-बड़े पत्थरों से भरा हुआ है जो इस घाटी के चारों ओर स्थित शृंखलाओं से टूट-टूट कर झील में गिरे हैं। रूपकुण्ड रूपगंगा का उद्गम-स्थल (गढ़वाली हर नदी को 'गंगा' कहते हैं) और त्रिशूल पर्वत के आधार पर स्थित है। त्रिशूल नन्दा देवी समूह की ही एक चोटी है और पूर्व देशान्तर ७९°४५' तथा उत्तर अक्षांश ३०°१८' के मध्य स्थित है। त्रिशूल के अतिरिक्त नन्दा देवी समूह की अन्य चोटियाँ हैं दुनागिर (२३,१८४ फीट), नन्दाकोट (२२,५३० फीट) और चंगवांग (२२,५१६ फीट)। त्रिशूल शिखर त्रिशूलाकार है और भगवान शंकर से उसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। यह तीन चोटियों को मिला कर बना है जो एक सीधी रेखा में क्रम से सम्बद्ध हैं और जिनमें सबसे ऊँची चोटी २३,४०६ फीट ऊँची है। नन्दा देवी तल्ला पैनखण्डा परगना के अन्तर्गत उसी नाम की पट्टी में ८०° पूर्व देशान्तर और ३०°२०' पूर्व अक्षांश पर स्थित है।

पूर्वोत्तर रेलवे की एक शाखा के अंतिम स्टेशन काठगोदाम से बस का एक मार्ग रानीखेत, कौसानी, गरुड़-बैजनाथ होता हुआ डांगोली गया है। यह दूरी लगभग १२८ मील है। ६ हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित रानीखेत से यह मार्ग पहाड़ के चक्करदार रास्तों से लगातार नीचे जाता हुआ दो हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित गरुड़-बैजनाथ को पहुँचता है। गरुड़-बैजनाथ एक तीर्थ है जहाँ प्रति वर्ष मुख्य हिन्दू पर्वों पर और संस्कारों के लिए बड़ी संख्या में यात्री आते हैं। गरुड़ से डांगोली तक लगातार चढ़ाई है। डांगोली से रूपकुण्ड की चढ़ाई उतनी क्रमिक नहीं। ग्वालदम, लोहाजंग और कैलवाविनायक में चढ़ाई बहुत कठिन है और प्रायः सीधे पहाड़ पर चढ़ना पड़ता है। देवाल में और बगरीगाढ़ और बाण के मध्य कुछ नीचे जाना होता है जिससे थकान मिट जाती है। बाण पहुँचने के लिए यात्रा के अंतिम चरण में जो कठिनतम चढ़ाई करनी पड़ती है उससे कुशल पर्वतारोहियों के भी छक्के छूट जाते हैं। रूपकुण्ड के मार्ग में देबाल या देवलगढ़ पहला पड़ाव है। देवाल उत्तर में अलकनन्दा, दक्षिण में चाँदपुर और चाँदकोट परगनों, पूर्व में चाँदपुर परगना तथा पश्चिम

में अलकनन्दा और परगना वारहश्याम से घिरा हुआ है। देवाल प्राचीन काल में सामन्ती सरदारों का शासनकेन्द्र था। इस गांव के समीपवर्ती खेतों में प्रागैतिहास-इतिहास संधिकाल तथा ऐतिहासिक काल के अनेक उपकरण एवं हिन्दू और मुस्लिम कालों के सिक्के पाए गए है। पूर्व की ही भांति देवाल आज भी एक व्यापारिक केन्द्र है और अन्न, ऊन, नमक, मिट्टी के तेल, वन्य-ओषधियों के व्यापार से लोगों ने तिब्बत और गंगा की घाटी के प्राचीन व्यापारिक सम्बन्ध को स्थिर रखा है। वन्य-ओषधियों का वहुत वड़ी मात्रा में निर्यात होता है। डांगोली से चढ़ते हुए ६ हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित ग्वालदम पहुँचते हैं। नन्दप्रयाग और नरायनवगर को जानेवाले मार्गों के चौराहे पर ग्वालदम स्थित है। यहाँ चाय का एक वगान है और आजकल सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत यहाँ स्फूर्ति के साथ लोगों के जीवन को विकसित करने के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं। देवाल से वगरीगाढ़ १०-११ मील दूर है। इतनी दूर न तो चढ़ाई खलती है न उतरना। परन्तु वगरीगाढ़ से वाण के मार्ग में इस सारी यात्रा की सवसे कठिन चढ़ाई लोहाजंग के पास करनी पड़ती है। वाण ८,००० फीट ऊँचा है। रूपकुण्ड के मार्ग में यह अंतिम गांव है जहाँ लोग निवास करते हैं। वाण से पातरनच्योंणी (वेश्याओं के नाचने के कारण इस शिखर का ऐसा नाम पड़ा) जाने के दो मार्ग हैं, पहला पलवाला हो कर और दूसरा वैंदिनी और आली वुगियाल होकर। वैंदिनी(११,५००फीट) से रूपकुण्ड तक घास या वुगियाल के अतिरिक्त अन्य कोई पेड़-पौदे नहीं हैं, ऊँची-ऊँची नंगी चोटियाँ हैं और सीधे उठे हुए विशाल शिखर। कैलवाविनायक में कुछ चौड़ा स्थान है और इसे स्थानीय जन रूपकुण्ड का प्रवेशद्वार कहते हैं। खुले आकाश के नीचे यहाँ काले प्रस्तर की गणेश की प्रतिमा विद्यमान है। इसे ही कैलवाविनायक कहते हैं। यह वरदान देते हैं और रूपकुण्ड, शीलसमुद्र या और आगे जहाँ भी जाना हो अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए नारियल की भेंट से इनको तुष्ट करना परम आवश्यक है। कैलवाविनायक से कुछ सौ फीट नीचे आ कर वग्गूवाशा और हूणियाठोर पहुँचते हैं। हूणियाठोर में ही अंतिम पड़ाव डालना होता है। रूपकुण्ड जानेवालों के लिए यह स्थान वहुत सुविधाजनक है। यहाँ से रूपकुण्ड पहुँचने के लिए दो हजार फीट चढ़ना पड़ता है और इस भाग में स्थायी रूप से हिम जमा रहता है।

१९५५ के वहुत पहले रूपकुण्ड के अस्थिढेर के वारे में अफवाहें थीं और इन अस्थियों के असाधारण आकार की होने के कारण स्थानीय जन कहते थे कि ये भूत-प्रेतों की हैं। इस प्रकार रूपकुण्ड एक भुतही झील वन गया। स्थानीय जन किंवदन्तियों और गप्पों में रुचि रखते हुए भी अत्यधिक अन्धविश्वासी होने के कारण इन अस्थियों का उल्लेख भी नहीं करते थे।

१९०५ में डॉ० लाँगस्टाफ त्रिशूल विजय कर चुके थे और १९०७ में वह इस क्षत्र में दोवारा आए। वह देखना चाहते थे कि पश्चिम की ओर से किन मार्गों से त्रिशूल पहुँचा जा सकता है। वह नन्दाघूंटी के पूर्व में होमकुण्ड के ऊपर हुमकुनी दर्रे को पार कर त्रिशूल के सर्वोच्च शिखर के पश्चिमी पार्श्व में एक हिमाच्छादित श्रेणी पर पहुँचे। ऋतु द्वारा पराजित होकर वह नन्दाकिनी घाटी लौट आए और वहाँ से डगवाल श्रेणी और वधान के वुगियाल पार कर पिण्डार नदी और अल्मोड़ा पहुँचे। वह रूपकुण्ड के पास से अवश्य गुजरे होंगे

और उन्होंने झील के बारे में अवश्य सुना होगा; क्योंकि उन्होंने उल्लेख किया है कि इस स्थान पर देवस्थान पहुँचने के पूर्व तीर्थयात्रियों ने अपने जूते फेंक दिए थे। परन्तु स्पष्टतः डॉ० लांगस्टाफ ने स्वयं झील या वहाँ के विशाल अस्थिढेर को नहीं देखा था। उनके बाद १९४२ तक यहाँ और किसी दल की यात्रा का उल्लेख नहीं मिलता।

मि० आर० वी० वर्नेड ने, जो बाद में इण्डियन सिविल सर्विस में आ गए थे और जो आजकल ऑक्सफर्ड के सेण्ट पीटर्स हॉल के वर्सर हैं, मुझे लन्दन में बताया कि वह १९४१ से १९४६ तक गढ़वाल के डिपुटी कमिश्नर थे और १९४२ में उन्हें रूपकुंड के अस्थिढेर की सूचना मिली थी। इसकी छानबीन करने के लिए उपयुक्त अवसर न होने से उन्हों ने केवल सूचना देने वालों के वक्तव्य लिखा लिए थे। वास्तव में १९४२ में वन विभाग के एक रेंजर श्री एच० के० मधवाल ने श्री वर्नेड को रूपकुण्ड-सम्बन्धी सूचना दी थी। उनकी खोज का महत्व यह है कि प्रथम बार एक अंधविश्वास-रहित और जिज्ञासु शिक्षित व्यक्ति ने रूपकुण्ड की दुर्घटना की वास्तविकता को प्रत्यक्ष रूप से समझने की चेष्टा की। १९५५ तक फिर इन अस्थियों के बारे में कुछ नहीं सुना गया। उस वर्ष श्री मधवाल ने वन विभाग के उप-मंत्री श्री जगमोहनसिंह नेगी को जो स्वयं गढ़वाली हैं, इनके बारे में सूचित किया। जिले के इतिहास में रुचि रखने के कारण वह वाण गए। उन्होंने सम्बन्धित लोकसाहित्य का संग्रह किया और झील तथा अस्थिढेर के बारे में प्राप्त सूचना का विवरण प्रकाशित किया। उन्होंने एक मत यह व्यक्त किया कि काश्मीरी सेनानायक ज़ोरावर सिंह १८४१ में भारतीय सीमा के पार तिब्बतियों द्वारा जब मारा गया तो उसके सैनिक इस मार्ग से आये और ये अस्थियाँ उनकी ही हैं। समाचार पत्रों में हलचल मच गई, जनता का भी कुतूहल बढ़ा। रायटर और **स्टेट्समैन** ने अपने प्रतिनिधियों को झील देखने के लिए भेजा और जिस वन अधिकारी ने अस्थिढेर के बारे में पहले सूचना दी थी उसके साथ उन्होंने रूपकुण्ड पहुँचने के लिए साहसपूर्ण प्रयत्न किया। इन प्रेस प्रतिनिधियों के विवरण समाचारपत्रों के मुख पृष्ठों पर छपे और रूपकुण्ड का रहस्य और गहरा हो गया। **स्टेट्समैन** के श्री महेशचन्द्र और वन अधिकारी श्री मधवाल अपने साथ कुछ खोपड़ियाँ, जबड़े, लम्बी-लम्बी अस्थियाँ और अनेक उपकरण, चप्पलें, मनके और चूड़ियाँ ले आए। इन वस्तुओं को परीक्षार्थ लखनऊ विश्वविद्यालय के मानवविज्ञान विभाग को दे दिया गया। दूसरी ओर प्रेस में इसकी चर्चा होती रही और जनसाधारण तथा विद्वान् समान रूप से यह जानने के लिए अत्यधिक कुतूहल प्रदर्शित करते रहे कि रूपकुण्ड की दुर्घटना का वास्तविक इतिहास क्या है और जो लोग यहाँ नष्ट हुए वे किस प्रजाति के थे। यह विवाद बाद तक चलता रहा, कभी-कभी जान-बूझ कर वैज्ञानिक स्तर गिराया गया और विरोधी मत व्यक्त किए गए, जो न केवल तथ्यों से मेल नहीं खाते थे वरन् सर्वथा असंगत थे और जिन्होंने समस्या को सुलझाने के बजाय और अधिक उलझा दिया।

रूपकुण्ड के सम्बन्ध में गढ़वाल के लोकसाहित्य में थोड़ा-बहुत उल्लेख मिलता है। गढ़वाल के एक विख्यात सज्जन ने मुझसे कहा कि सभी महत्वपूर्ण घटनाओं और ऐतिहासिक तथ्यों के विषय पर चटपट लोकगीत रचने में गढ़वाली बड़े निपुण होते हैं और उनके सच्चे और वास्तविक चित्रण के कारण हम उन पर विश्वास कर सकते हैं। जनसाधारण को वे दन्तकथायें या उनके विस्तृत विवरण याद नहीं हैं जिन्हें हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। ये

कथायें विभिन्न गाँवों से ऐसे वृद्ध पुरुषों से एकत्रित की गई हैं जिनकी स्मरणशक्ति स्वयं धूमिल हो चली है। कभी-कभी कुछ उत्साही व्यक्ति अपनी कल्पना के सहारे ही इन कथाओं की सृष्टि कर डालते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि रूपकुण्ड के अस्थिढेर से इन दन्तकथाओं का कोई सम्बन्ध नहीं है। इनमें जिस दुर्घटना का उल्लेख हुआ है वह पहले हुई और कालान्तर में उसको लेकर ये कथायें रची गईं, अथवा ये कथायें पहले से प्रचलित थीं और बाद में रूपकुण्ड की कहानी उनसे जोड़ दी गई। यह प्रश्न हल नहीं होने का, तथापि इन दन्तकथाओं को उद्धृत करना समीचीन है। रूपकुण्ड के रहस्य पर प्रकाश डालने वाली अनेक दन्तकथाओं से मैंने दो चुनी हैं क्योंकि इन्हें अतिवृद्ध व्यक्तियों ने सुनाया है जो जीवन की साँझ में हैं।

पहली कथा इस प्रकार है। कन्नौज के राजा और उसके राज्य पर देवी भगवती का कोप था। अच्छा धान बोने पर सोला उगता। लोग जब अच्छे गेहूँ की उपज की आशा लगाए बैठे थे, खेतों में गोबरी पैदा हुई। चने की फसल जब लोग काटने गए तो उन्हें केवल काले सूखे छिलके मिले। जौ के खेतों में घास-पतवार का साम्राज्य हो गया। लोहाजंग के प्रदेश में बर्फीली हवा वेग से चलती तो लगता लोगों के कान फट जायेंगे। बैदिनी में विषाक्त धुयें व्याप्त हो गए जो शिर में भीषण पीड़ा उत्पन्न कर देते। गिगटोली के पर्वत हिमाच्छादित हो गए। उन पर लोगों का चलना असम्भव हो गया। गायें पेंड़वों (भैंस के बच्चों) को जन्म देतीं और भैंसें बछड़ों को। इसी प्रकार भेंड़ों से मेमने उत्पन्न होते और बकरियों से भेंड़ों के बच्चे। मनुष्य की सन्तानें भी लुंजपुंज शरीर लेकर धरती पर आतीं। जल रक्तिम वर्ण का हो गया। देवी के कोप से सारे लोग हर प्रकार से संतप्त थे। कन्नौज के राजा जसदल ने विद्रूप के साथ प्रजा से कहा, "देवी भगवती के दर्शनार्थ तुमने तीर्थयात्रा नहीं की, उसी का यह परिणाम है। चलो, हम तीर्थयात्रा के लिए तुरन्त कूच करें।"

प्रजा के परामर्श से राजा ने भोजपत्र के छत्र निर्मित करने की आज्ञा दी। लोगों में अपूर्व उत्साह था। राजा की आज्ञा से उन्होंने नए परिधान बनवाए और सारे गन्दे वस्त्रों को स्वच्छ किया। भोजपत्र के छत्र भी तैयार हो गए।

सभी तैयारियाँ समाप्त होने पर वे तीर्थयात्रा पर चल पड़े। ढोला समुद्र, मावाभवर और पित्वाभूवा होते हुए उनका दल चामू ढाँटा राज्य में पहुँचा। वहाँ से वे दिल्ली गए और फिर हलद्वानी, सोमेश्वर, बैजनाथ (सीरकटुर), ग्वालदम, लोहाजंग होते हुए बैदिनी पहुँचे। बैदिनी में उन्होंने कुछ दिन ठहर कर देवी भगवती के मंदिर में पूजा की और बलि दीं। 'जात्रा' बैदिनी से पातरनच्योंणीं पहुँची और वहाँ से गिगटोली जो रूपकुण्ड का आधार है। यहाँ कन्नौज की रानी को प्रसव वेदना हुई, अतः सारी 'जात्रा' को रुकना पड़ा। घने बादल छा गए, कुहरा चारों ओर फैल गया और शीघ्र ही गिगटोली अन्धकार में डूब गया। यहाँ पर एक चट्टान के आश्रय में बल्पा रानी ने एक शिशु को जन्म दिया। वह स्थान आज कल बग्गूवाशा के समीप बल्पा-सुलेड़ा के नाम से प्रसिद्ध है (सुलेड़ा=प्रसूतिगृह)।

जब देवी भगवती को अपने वासस्थान के अन्दर एक शिशु के जन्म का समाचार मिला, उन्होंने अपने भृत्य हंस को पता लगाने के लिए भेजा कि वे लोग कौन थे जिन्होंने उनके पवित्र स्थान में प्रवेश कर उसे अपवित्र किया था। हंस ने गिगटोली में जाकर इस

यात्रीदल के विषय में सभी बातें जान लीं। उसने वापस कैलाश में जाकर भगवती को बतलाया कि कन्नौज के राजा और रानी वहाँ पर अंगरक्षक दल के साथ हैं और रानी ने एक शिशु को जन्म दिया है। उसने देवी को यह भी सूचित किया कि वल्पा रानी देवी भगवती की 'धरम' बहिन हैं। तब तक भगवती के एक अन्य सेवक देवसिंह ने आकर कहा, "माता, तुम्हारा कैलाश अपवित्र हो गया।" देवी ने अपने दो दूतों रनखल और भौरियाल को आज्ञा दी कि वे राजा, रानी और उसके साथियों को वापस कन्नौज भेज दें। दूतों ने आज्ञापालन में कुछ आनाकानी दिखाई क्योंकि वे राजा के सहस्र अंगरक्षकों से डर रहे थे। भगवती ने तब आज्ञा दी कि राजा के दल पर पत्थर बरसाओ। यह भी उन्होने स्वीकार न किया।

फिर भगवती ने अपने पुराने भृत्य लाटू को बुलवा कर कहा कि मेरा वासस्थान अपवित्र हो गया है, अतः तुम मेरे पवित्र स्थान का अपमान करनेवाले राजा, रानी और उनकी सेना को नष्ट कर दो। लाटू ने उत्तर दिया कि राजा और रानी आपके अतिथि हैं, अतः उनका उचित सत्कार करना चाहिए न कि उन्हें नष्ट कर दिया जाय। परन्तु भगवती अपनी इच्छा पर दृढ़ थीं और उन्होंने लाटू को आज्ञापालन करने पर कई बातों का लालच दिलाया। वह बोलीं, "वत्स, मैं तुमको दैवी शक्ति से सम्पन्न कर दूंगी। राजा और रानी का काम तमाम कर दो तो मैं तुम्हें अपने दाहिने हाथ के समीप स्थान दूँगी और भक्तगण तुम्हारी भी वन्दना करेंगे। प्रति वर्ष वैदिनी में तीर्थयात्री तुम्हें भोजन और उपहार चढ़ाया करेंगे। बड़े 'यती' में जब मेरे भक्त 'ब्राह' आयेंगे, उनमें से प्रत्येक तुम्हें कम से कम एक 'तिमासी' (तीन आने का एक सिक्का) भेंट करेगा। इन अवसरों पर मेरी सब बहनों की स्मृति में डोले निकलेंगे। मैं वैदिनी में तुम्हारी पूजा के लिए आज्ञा निकाल दूंगी। यदि तुम्हारे सेवक कोई वस्तु बलपूर्वक छीन लेंगे तो वह पाप नहीं माना जायगा।"

इन सब लालचों के बावजूद राजा और रानी की हत्या के लिए लाटू तैयार नहीं हो रहा था। भगवती ने फिर इन शब्दों के साथ उसे मनाना चाहा, "मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। भविष्य में तुम मेरे मुख्य गण रहोगे और सभी उत्सवों में तुम्हें ही मेरे आगमन को घोषित करने का सम्मान प्राप्त होगा। जाओ, अब चले जाओ। यतियों (ब्राह्मण भक्तों) को आने और विश्राम करने दो, परन्तु अन्यों को नष्ट कर दो क्योंकि उन्होंने मेरे पवित्र कैलाश को कलुषित किया है। मेरे विश्वस्त सेवक, अविलम्ब जाओ क्योंकि आधी सेना रूपकुण्ड पहुँच चुकी है यद्यपि वल्पारानी स्वयं अभी गिंगटोली में ही है।" लाटू ने आज्ञापालन की और वह ज्योंरगली गया जहाँ उसने राजा को एक बड़ी सेना के साथ देखा। उसने पूछा आप लोग कौन हैं और उन्होंने उत्तर दिया कि हम भगवती के दर्शन के इच्छुक तीर्थयात्री हैं। उन्होंने यह भी बताया कि हम कन्नौजनरेश जसदल के सैनिक हैं। फिर लाटू ने पता लगाया कि उनमें कौन यती थे। यतियों में एक ऋषि भी थे, चन्द्र ऋषि। उन्होंने आगे बढ़ कर यतियों की ओर संकेत किया और कहा कि वे यती और वह स्वयं राजा जसदल की सेना से सम्बन्धित नहीं थे। लाटू ने चन्द्र ऋषि और यतियों को आगे बढ़ने की अनुमति दे दी किन्तु शेष को उसने दैवी दण्ड दिया। उसने राजा को बतलाया कि पवित्र कैलाश को कलुषित करने के अपराध में ही उन लोगों को दण्ड दिया जारहा है। काल बादलों ने आकाश को ढक लिया और सर्वत्र घोर तिमिर छा गया। वर्षा, मेघध्वनि, हिमपात ने मिलकर प्रलय

ढा दिया। ऊपर से लाटू ने पत्थर और लोहे के टुकड़े बरसाना आरम्भ कर दिया । जो रूप-कुण्ड पहुँच चुके थे वे भी शेष न रहे । गिगटोली की नदियों में बाढ़ आ गई । बल्पा-सुलेड़ा जहाँ रानी ने शिशु को जन्म दिया था, वह गया । बाद में कुम्वागढ़ में ग्वालों को बल्पा रानी की अस्थियाँ मिलीं ।

सभी अपराधियों के विनाश के उपरान्त तूफ़ान थमा और आकाश स्वच्छ हुआ । लाटू ने भगवती के पास वापस जाकर सारी घटना सुनाई । उन्होंने लाटू की प्रशंसा की । वहाँ पर यती भी उपस्थित थे । भगवती ने उनसे पूछा कि तुम लोग अब कहाँ जाओगे । उन्होंने कहा, "हम लोग व्यापार के काम से हूणदेश जायेंगे । हम लोग नमक, सोहागा, ऊनी वस्त्र, चार सींगों वाली गायें, ज्वापा बैल, हुंकारी बकरियाँ और च्याल्पू बकरियाँ खरीदना चाहते हैं ।" भगवती ने कहा, "यदि तुम लोग व्यापार के काम से जाना चाहते हो तो जा सकते हो ।" फिर उन्होंने उनको सबसे आसान मार्ग बताया और उपयोगी निर्देश दिए। "तुम्हें हुंकारी बकरियाँ पवित्र गंगा में मिलेंगी । वहाँ से तिब्बत चले जाना तो नमक और सोहागा पा जाओगे । तिब्बत में लामा हूणिया से तुम्हारी भेंट होगी । तिब्बत की स्त्रियाँ हुणादाम-रेहना कहलाती हैं । ये ऊनी वस्त्र तैयार करती हैं, अतः ऊनी वस्त्र तुम वहाँ पर खरीद सकते हो ।"

चन्द्र ऋषि और अन्य तीर्थयात्री हूणदेश गए और सभी वस्तुओं खरीदने के बाद वे लौट कर त्रिशूली आए और वहाँ से शील समुद्र, गिंगटोली, वैदिनी, जनखल, गोखल, चाया-चोरी, दोवाचोरी होते हुए अंत में ऋपासुर पहुँचे जहाँ वे बस गए । वहाँ के निवासी इन व्यापारियों के पास इतनी सुन्दर वस्तुयें देखकर चकित रह गए । उन्होंने उनके साहस, उद्यम एवं अध्यवसाय की भूरि-भूरि प्रशंसा की ।

परन्तु भगवती ने तभी से इस व्यापारिक मार्ग को अवरुद्ध कर दिया है और अब तो उसका लेशमात्र चिन्ह भी शेष नहीं रहा ।

दूसरी कथा भी कम रोचक नहीं है । देवी पार्वती,जिन्हें स्थानीय बोली में देवी भगवती कहते हैं, शंकर जी से ब्याही गईं । ऋषियों (साधुओं) ने अयोध्या की कुछ भूमि कन्यादान के रूप में भगवती को दी । भगवती और शंकर जी ने कुछ समय तक अयोध्या में वास किया और बाद में उन्होंने पवित्र कैलाश जाने का निश्चय किया । नीचे अपने भक्तगणों तथा अन्य देवी-देवताओं के साथ भगवती और शंकर की कैलाश-यात्रा का वर्णन है ।

यह दल भावर होता हुआ डाँगोली पहुँचा जहाँ भगवती की एक बड़ी बहन देवी थालीमाली वास करती हैं । यहाँ प्रति वर्ष सितम्बर में उनके सम्मान में एक बड़ा मेला लगता है । दूर-दूर के लोग इस मेले में आते हैं । डांगोली से दल ग्वालदम पहुँचा जहाँ से त्रिशूली पर्वत का दर्शन किया जा सकता है । कुछ और आगे बढ़ने पर दल की एक सदस्या, देवी नन्दकेसरी, बहुत अधिक थक गईं और उन्होंने वहीं विश्राम करना चाहा । उन्होंने भगवती से प्रार्थना की कि उन्हें वह और आगे न ले जायें । फलतः, नन्दकेसरी वहीं ठहर गईं । उस स्थान का नाम उनके नाम पर नन्दकेसरी पड़ गया, या यों कहें कि देवी नन्दकेसरी के सम्मान में जो मन्दिर वहाँ बना है उनके नाम पर यह स्थान नन्दकेसरी के नाम से विख्यात हुआ । दल का अगला पड़ाव मुन्दोली (मुनोली) में पड़ा जहाँ भगवती ने उस स्थान के

भुँयाल (रक्षक) जयपाल से कहा कि दल को त्रिशूली का मार्ग बतलाओ। उसने लोहाजंग और हरपिठवार होते हुए आली का मार्ग निर्दिष्ट किया। आली पहुँचने पर समीपवर्ती गाँव बैंदिनी भगवती को बहुत प्रिय लगा। यह गाँव आली से कुछ नीचे है। भगवती ने अपने पतिदेव से बैंदिनी चलने की प्रार्थना की और वे सब लोग उधर चल पड़े। भगवती ने बैंदिनी में एक कुण्ड बनवाना चाहा किन्तु गाँव वाले उन लोगों को वहाँ बसने देने के लिए तैयार न हुए। अतः उन्हें वाण जाना पड़ा। वाण से वे देओलघाटा गए जहाँ से आली दिखाई देता था। दूर से देखने पर आली की सुषमा ने भगवती को मोह लिया और उन्होंने अब यह निश्चय किया कि उनके वास के लिए आली सुन्दरतर स्थान है। अतः वे आली की ओर बढ़े किन्तु वहाँ वे अधिक काल तक न रहे। शीघ्र ही वे बुगियाल के लिए चल पड़े और वहाँ से अविनीचोरी। इस स्थान से बैंदिनी दिखाई पड़ता था और पहले की अपेक्षा अधिक मनोरम। अतः वे लोग फिर वाण और वहाँ से गैरोली आए। गैरोली से तीन मील उत्तर जाने के बाद दल के एक सदस्य डोलीदेव ने इस सतत यात्रा से क्लान्त हो वहीं डेरा जमा दिया और उस स्थान का नाम डोलियाधार पड़ा। दल के शेष लोग बैंदिनी पहुँचे। इस बार गाँव वालों ने कोई आपत्ति न की। बैंदिनी में उन्होंने एक कुण्ड बनाया और भगवती के सम्मान में एक मन्दिर भी खड़ा किया। शीघ्र ही फिर यात्रा आरम्भ हुई और वे घोड़ाढापुन पहुँचे जहाँ गर्मी के दिनों में चरने के लिए घोड़े भेज दिए जाते थे। अगले पड़ाव पर उनके दल की 'पातरों' (नर्तकियों) ने नृत्य दिखाए। बहुत थकी होने के कारण वे वहीं रुक गईं, अतः वह स्थान पातरनच्यौणी कहलाया। शेष व्यक्तियों ने अपनी यात्रा जारी रक्खी। वे आगे जब विश्राम के लिए ठहरे, कैलदेव ने भगवती से वहीं ठहरने की अनुमति माँगी। भगवती ने अनुमति तो दे ही दी, साथ में यह भी कहा कि तुम्हारी उचित रूप से पूजा हुआ करेगी। यह स्थान कैल्वाविनायक के नाम से प्रसिद्ध है। फिर अगले पड़ाव पर भगवती के वाहन बाघ ने थके होने के कारण आगे बढ़ने से असमर्थता प्रकट की और वह वहीं ठहर गया। यह स्थान बग्गूवाशा कहलाया। अब भगवती को पैदल चलना पड़ा। छिड़ीनाग पहुँचने पर नागदेवता ने वहीं रुकने की इच्छा दिखाई अतः उन्हें वहीं छोड़ दल आगे बढ़ा। अगला पड़ाव रूपकुण्ड था जहाँ रुप्व देव ठहर गए क्योंकि आगे जाने का उत्साह उनमें शेष न रहा। शेष दल बढ़ता हुआ ज्योंरगली पहुँचा। इस स्थान के बाद से भगवती के दो सेवक देवसिंह और लाटू उन्हें एक डोली में ले चले। इसी सेवा के कारण अब देवसिंह और लाटू भी देवता मान लिए गए हैं और विशेष सम्मान-स्वरूप लाटू भगवती के दाहिने ओर और देवसिंह उनके बायें ओर बैठते हैं। भगवती ने इससे भी अधिक सम्मान उन्हें दिया और कहा कि अब से जो भी यात्री उनके दर्शनार्थ आएगा, देवसिंह और लाटू को रिंगाल या मालू का एक-एक छत्र और तीन-तीन आने भेंट करेगा। दल ज्योंरगली से बढ़ कर शीलसमुद्र पहुँचा। (शील का अर्थ है शिला; यहाँ एक बहुत बड़ी शिला है)। यहाँ पर लोग साधारणतया श्राद्ध करते और पिण्डदान देते हैं। इस स्थान से वे धूजाओकली और वहां से त्रिशूली गये और त्रिशूली में अंततः बस गए।

रूपकुण्ड से सम्बन्धित लोकसाहित्य से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि रूपकुण्ड के समीप एक दर्रा और तिब्बत जाने के लिए एक मार्ग था। रूपकुण्ड में प्राप्त अस्थिढेर का

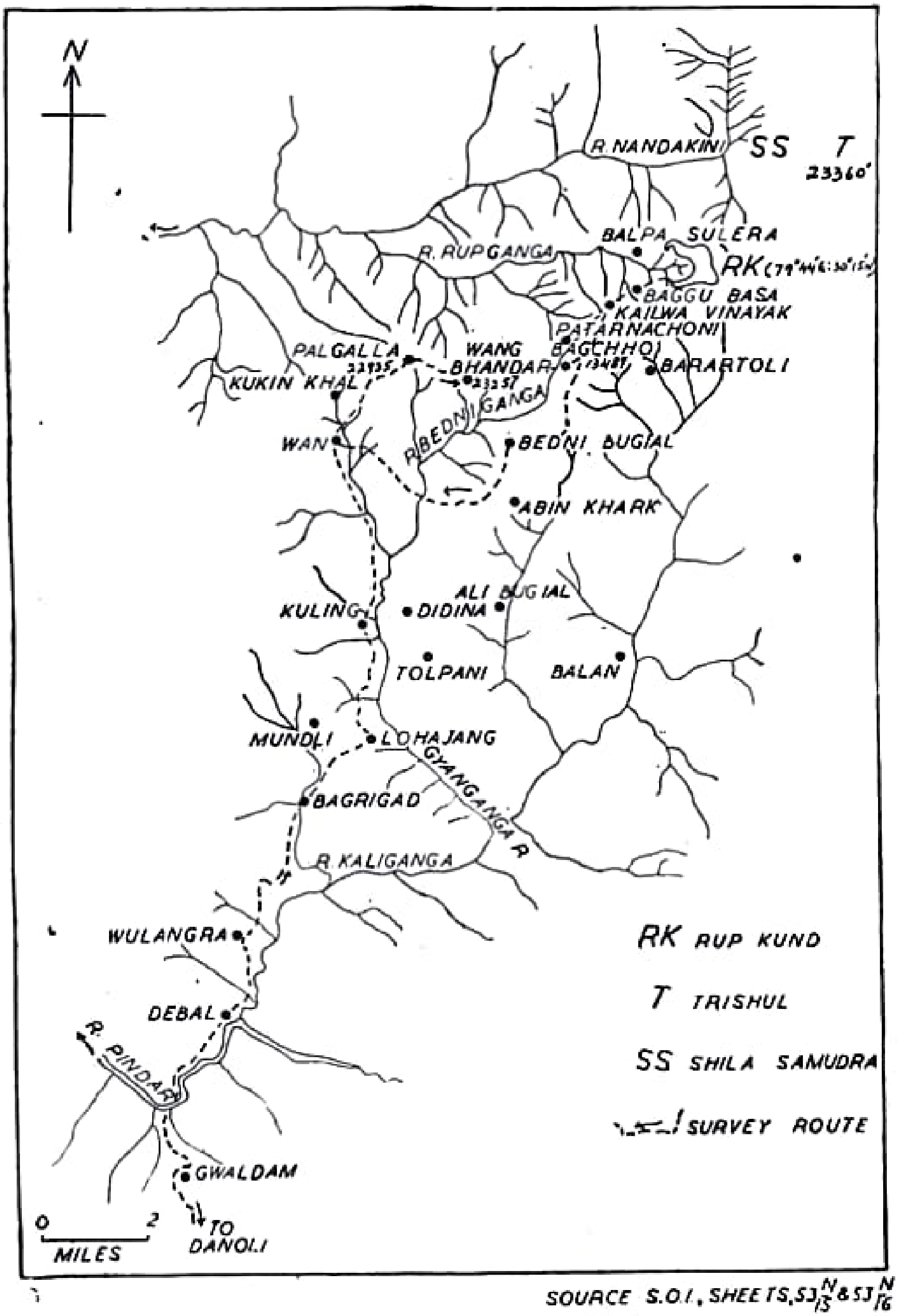

SOURCE S.O.I. SHEETS, 53 N/15 & 53 N/16

रूपकुण्ड का मार्ग

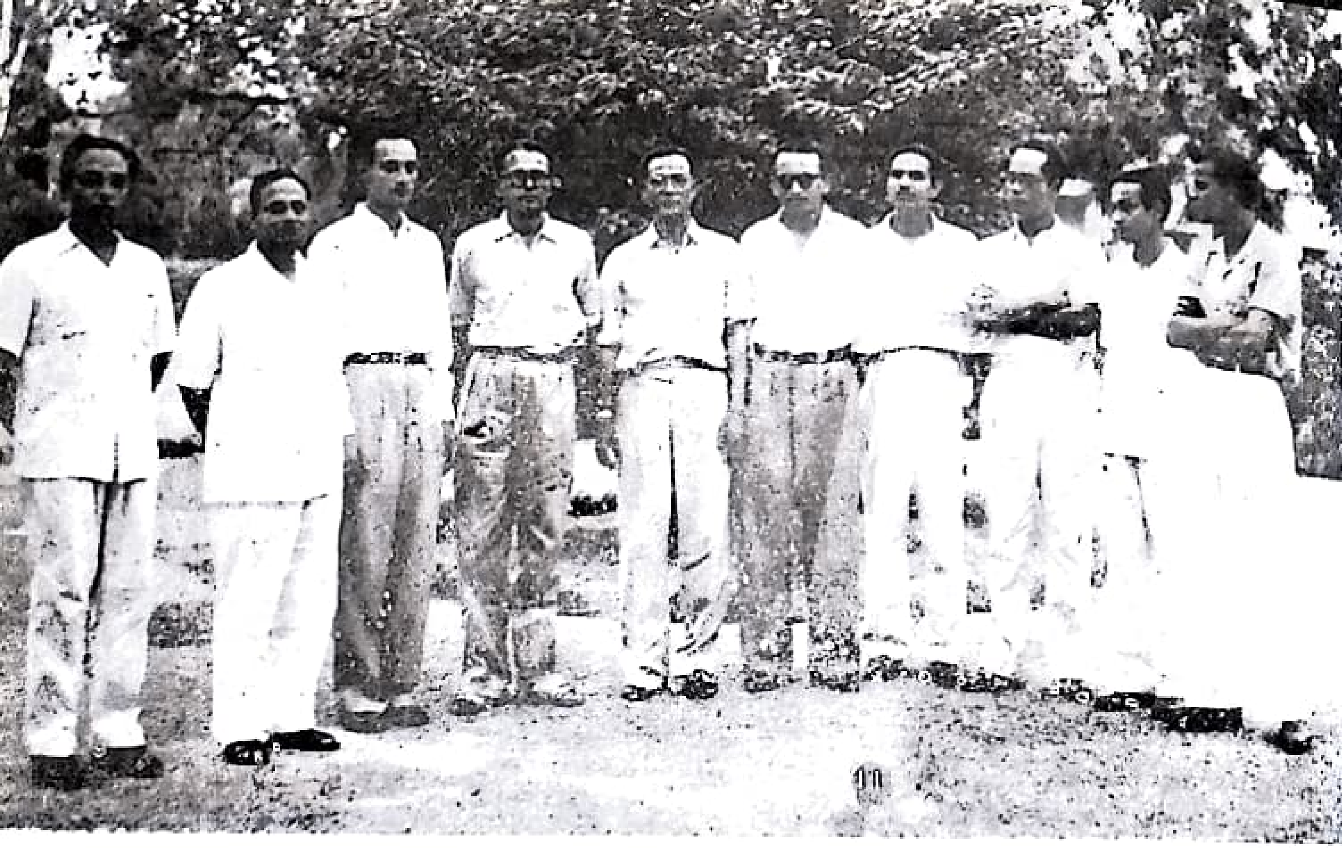

रूपकुण्ड आरोहक दल

(बांयें से) श्री बी० एम० तिवारी, डा० बी० एन० मल्होत्रा, श्री अशोक घोष, डा० जी० एम० कुरुलकर, डा० डी० एन० मजुमदार, श्री जगदीश शर्मा, श्री कैलाश सक्सेना, श्री दिलीप सेन, डा० एम० एन० बोस, श्री रमा जोशी।

(नीचे) त्रिशूल पर्वत श्रृंखला

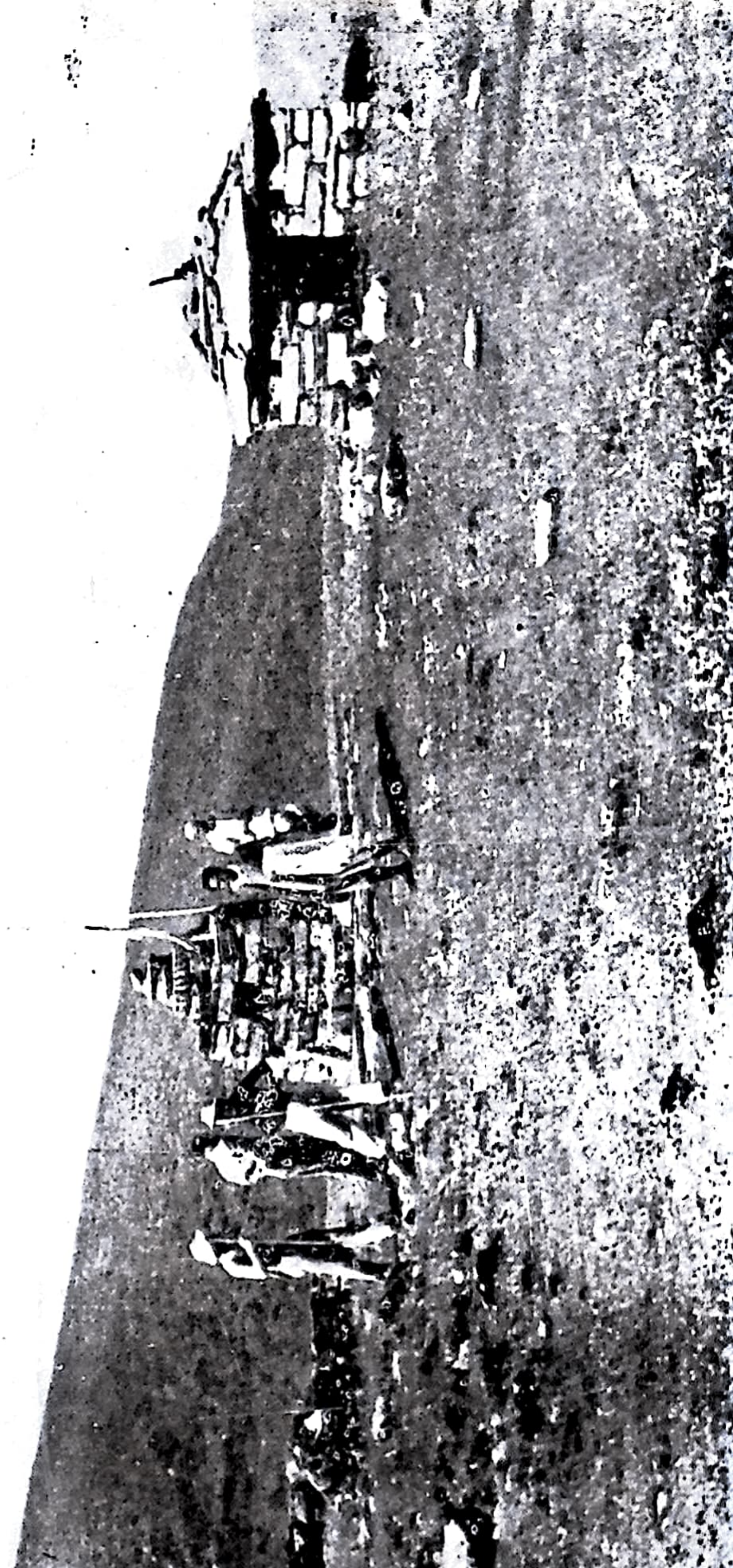

बैदिनी के मन्दिर

(ऊपर) उत्तरी धार से दिखाई देता हुआ रूप कुण्ड
(नीचे) कैल्वा विनायक रूपकुण्ड के मार्ग में १४५०० फीट की ऊँचाई पर

दिन भर के कार्य के बाद रूपकुण्ड में

(ऊपर) रूपकुण्ड से प्राप्त चमड़े की अनेक चप्पलों में से दो

(नीचे) रूपकुण्ड से प्राप्त अस्थियों में से कुछ

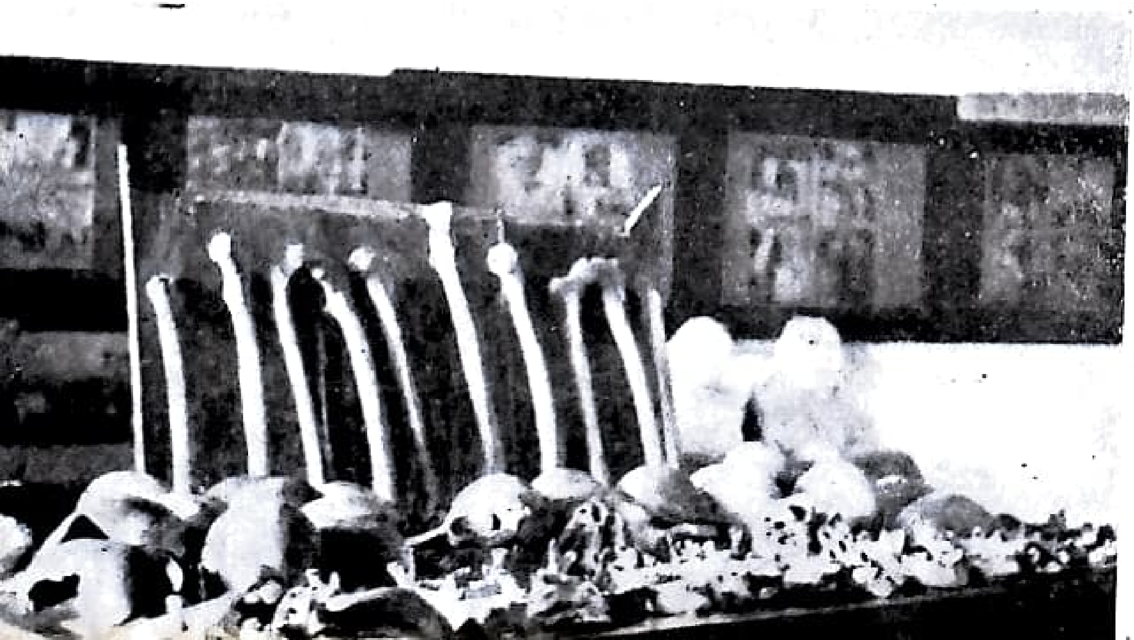

रहस्य जिस दुर्घटना या जिन दुर्घटनाओं के इतिहास के गर्भ में छिपा हुआ है उसके उद्घाटन की सम्भावनाओं के लिए यह एक अच्छा सूत्र हो सकता है।

रूपकुण्ड की दुर्घटना के रहस्य को सुलझाने के लिए कई मत व्यक्त किए गए हैं। राजा जसदल के सैनिकों के नाश की कथा में विश्वास करनेवाले कहते हैं कि वे शिखर पर से सीधे झील में आकर गिरे। उनका कथन है कि ज्योंरगली दर्रे की ओर ही रूपकुण्ड के ८०° वाले ढलानों पर ही अस्थियाँ मिली हैं। परन्तु केवल लोकगीतों के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता और झील में सीधे गिरने की बात भी समझ में नहीं आती क्योंकि हमें केवल अस्थियाँ और खोपड़ियाँ मिली हैं।

एक अन्य मत है कि हर १२ वर्ष पर नन्दा देवी की यात्रा करने की जो पवित्र परम्परा चली आ रही है ऐसी ही किसी यात्रा से वापस आते समय दैवी आपदाओं के कारण कोई यात्रीदल यहाँ विनष्ट हो गया था।

हम पहले कह आये हैं कि उपमंत्री श्री जगमोहन सिंह नेगी ने रूपकुण्ड दुर्घटना का सम्बन्ध १८४१ में जोरावर सिंह की सेना के नाश से जोड़ा है। वह ज़ोरावर सिंह के बारे में कहते हैं—"ऐसा विवरण मिलता है कि ज़ोरावर सिंह की पत्नी दुर्बलावस्था में थी और वह वापस भेज दी गई और लेपू झील के दर्रे के पास पहुँची। ज़ोरावर सिंह की पराजय और मृत्यु के बाद उसके सैनिकों ने इस दुर्गम प्रदेश से भागने के लिए विभिन्न मार्ग अपनाए। कुछ जंगसाकर दर्रे से होकर भागे, दूसरे नीती दर्रे से। ज़ोरावर सिंह की पत्नी के लिए एकमात्र मार्ग लेपू झील के दर्रे से हो कर अल्मोड़ा पहुँचता था। उसके अंगरक्षकों ने निश्चय ही व्यापारियों का वेश धारण किया होगा और अपने शस्त्र लेपू झील के दर्रे के पास छोड़ दिए होंगे। संभव है कि वे रूपकुण्ड के समीप नष्ट हो गए।" हाल में डा० श्रीमती बी०के० वाल ने इस मत को निराधार सिद्ध कर दिया है। वह लिखती हैं—"ज़ोरावर सिंह १२ दिसम्बर, १८४१ को मारा गया। उसके परिवार ने चांग लूचे ला दर्रे से होकर अल्मोड़ा पहुँचने की चेष्टा नहीं की बरन् लेह ले जाया गया, जहाँ सेनानायक की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र उत्पन्न हुआ। बाद में उसके परिवार को उसके अपने गाँव बीजापुर पहुँचा दिया गया। (ज़ोरावरसिंह की मृत्यु का समाचार मिलने पर) उसकी सबसे छोटी पत्नी आशादेवी महाराज गुलाब सिंह के पुत्र राजकुमार ऊधम सिंह की उपस्थिति में सती हुई।"

इन विभिन्न मतों के सन्दर्भ में वैज्ञानिक प्रमाणों पर विचार करना श्रेयस्कर होगा। नृशास्त्री ही इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए सर्वश्रेष्ठ अथवा योग्य होते हैं। जितना भी वैज्ञानिक आधार पर पता किया जा सकता था किया जा चुका है और परिणाम समालोचनात्मक मूल्यांकन के हेतु प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

प्रयोगशाला में तीन मास तक रूपकुण्ड की दी हुई वस्तुओं का अध्ययन करने के बाद हम निम्नलिखित अस्थायी परिणामों पर पहुँचे। इस कार्य में शरीररचनाविशेषज्ञों, दन्तविशेषज्ञों और प्राचीन-प्राणिशास्त्रियों ने परस्पर सहयोग दिया।

अस्थियों, खोपड़ियों और लम्बी-लम्बी हड्डियों को देखने से पता चलता है कि वे एक ऐसी प्रजाति प्रकार की हैं जो न तो स्थानीय है न तिब्बती, वरन् एक ऐसे प्रजातीय प्रकार से सम्बद्ध है जिसका विशिष्ट क्षेत्र पंजाब अथवा उससे भी पश्चिम का प्रदेश है। वह सिख

प्रजातीय प्रकार से अधिक मिलती है। इन लोगों का कद काफी ऊँचा था; सिर लम्बे से लेकर उप-मध्यम थे, खोपड़ी का ऊपरी भाग उठा हुआ था, माँसपेशियाँ वहुत विकसित थीं, और इनकी खूराक वहुत अच्छी रही होगी। जवड़ों से भी वल का पता चलता है। ये लोग कड़ी चीज़ें खाने के आदी थे जिनके लिए खूव अच्छी तरह से चवाना आवश्यक है परन्तु पान चवाने का कोई प्रमाण नहीं मिल सका। दाँतों में चित्तियाँ पड़ी हैं जिससे अनुमान किया जा सकता है कि ये लोग वचपन से किसी 'फ़्लोराइड' क्षेत्र में रहते थे। ऐसी अवस्था पंजाव के ज़िलों, उदाहरणार्थ पश्चिमी पाकिस्तान के सीमापवर्ती क्षेत्रों में पाई जाती है।

हम अंतिम रूप से परिणामों पर नहीं पहुँच सके क्योंकि अस्थियों की कम संख्या तथा भूस्तरज्ञान के अभाव में हम अपने सव सन्देहों को दूर न कर सके। हमने सोचा कि सर्वप्रथम झील की स्थिति तथा आकार-प्रकार और स्तरों का अधिक वैज्ञानिक ज्ञान अपेक्षित है। दूसरे अधिक संख्या में खोपड़ियों और यदि सम्भव हो तो उपकरणों का एकत्रित किया जाना आवश्यक था। यह विना उस स्थल पर गए सम्भव न था। उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री डॉ० सम्पूर्णानन्द ने रूपकुण्ड जाने के लिए एक खोजदल के व्यय को वहन करने का प्रस्ताव रखा और हमने साभार इसे स्वीकार किया। मई १९५६ में दस वैज्ञानिकों का एक दल रूपकुण्ड-यात्रा पर चल पड़ा। इसमें वम्वई के एस० जे० डी० मेडिकल कॉलेज के शरीररचनाशास्त्र के एक वरिष्ठ प्रोफेसर, एक योग्य भूगर्भशास्त्री, एक प्रागैतिहासकार, एक प्राचीन-प्राणिशास्त्री, एक भूरसायनवेत्ता, विश्वविद्यालय के मुख्य मेडिकल ऑफिसर और हमारे विभाग के कई सांस्कृतिक और भौतिक नृशास्त्री सम्मिलित थे। वाँच्छित स्थल की खुदाई और अध्ययन के लिए ऋतु प्रतिकूल सिद्ध हुई और यद्यपि उक्त दल झील तक पहुँच गया, कोई काम नहीं किया जा सका क्योंकि झील में कई फीट हिम जमा हुआ था। परन्तु उसी वर्ष सितम्वर मास में मेरे नेतृत्व में दूसरा खोजदल रूपकुण्ड गया जो पहले दल से छोटा था। हम झील पहुँचे, हमने अस्थियाँ और उपकरण खोद कर एकत्रित किए और हम लौटे। हमारे पास वहुत बड़ी मात्रा में खोपड़ियाँ और अस्थियाँ, उपकरण, वालों के नमूने, कपड़े, गहने, वर्तन, तम्बू के सामान, खूँटियाँ, कीलें और चाकू के फल थे। कोई शस्त्र नहीं मिले। इस यात्रा की सफलता में हमें अल्मोड़ा के ऐडवोकेट श्री शेरसिंह और देवाल के अन्न-व्यापारी श्री चमन लाल से विशेष सहायता मिली। इस खोजदल के सदस्यों में मानवविज्ञान विभाग की ओर से श्री रिपुदमन सिंह, डॉ० मिहिर सेन, श्री चन्द्रसेन, श्री रमाप्रसाद जोशी और रग्घू चपरासी थे।

हमारी प्रयोगशाला में अस्थियों का अध्ययन किया गया, उपकरणों की परीक्षा हुई, कपड़े और चमड़े के टुकड़े विशेषज्ञों को भेजे गए। अस्थियों की विभिन्न परीक्षायें की गईं। अस्थियों के गूदे और उनसे चिपटे हुए मांस के अध्ययन से रक्तसमूहों का पता किया गया, यह जानने के लिए कि वे वस्तुयें एक ही स्तर से पाई गई हैं या नहीं, फ्लोरीन परीक्षा की गई, खोपड़ियाँ और अस्थियाँ नापी गई, नाप से प्राप्त आँकड़ों को संख्याशास्त्र की सहायता से व्यवस्थित किया गया, वालों के 'क्रॉस सेक्शन' की परीक्षा की गई, दाँतों और जवड़ों के एक्स'रे लिए गए, और अन्त में रेडियोकारवन काल-निर्धारण के लिए कुछ अस्थियाँ मिशिगन विश्वविद्यालय को भेजी गई। सितम्वर १९५७ में विशेषज्ञों की राय के लिए नाप-सम्वन्धी आँकड़े, फ़ोटोग्राफ, वालों के नमूने, कपड़े और अन्य उपकरण योरप ले जाए गए।

दूसरे शब्दों में, सभी आवश्यक प्रयोग और परीक्षायें की गईं, कुछ छोड़ा नहीं गया, और अब हम समालोचनात्मक मूल्यांकन के लिए परिणाम प्रस्तुत कर सके हैं।

रूपकुण्ड से प्राप्त सूखे मानवीय मांस के कुछ नमूनों से 'इंनहिविशन' विधि द्वारा रक्त-समूह निश्चित करने की चेष्टा की गई। ऐसा विचार है कि इनकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न है और 'इंनहिविशन' की मात्रा में थोड़े-थोड़े अन्तरों के आधार पर प्रजातीय विभेद मान लिए गए हैं। परन्तु इससे हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि इनमें कुछ नमूनों का उद्गम एक नहीं है। हाई टाइटर या उच्च शक्ति ए-विरोधी सीरा से प्रारम्भ में कण्ट्रोल करने के उपरान्त ए-विरोधी और बी-विरोधी सीरा, और एक 'ओ' दाता के सीरा से परीक्षायें दी गईं। परिणामों से 'ए' रक्त की प्रवलता का पता चलता है, और इस तथ्य से इस बात की पुष्टि होती है कि रूपकुण्ड में नष्ट होने वाले लोगों की उत्पत्ति पश्चिमोत्तर प्रदेश में हुई थी। स्थानीय लोगों के रक्त में 'बी' की ही अधिकता होती है जैसा कि भारतवर्ष के तथा अन्य देशों के मंगोल प्रजाति के लोगों में पाया जाता है।

अस्थियों के अन्दर फ़्लोरीन, ऐश, कैल्शियम और फ़ास्फ़ोरस की मात्रा निर्धारित करने के लिए फ़्लोरीन परीक्षायें की गईं। देखा गया कि फ़्लोरीन की मात्रा भिन्न-भिन्न है, यथा--४१११·३, २५४८·५, १७३२·८, १६७४·५, १६३८·५, १४२७·५ और १२१७·३। 'ऐश' ७३·८३ से ५५·२३ प्रतिशत तक था, कैल्शियम ४६·६४ से ३७·३४ f. f. m. और फ़ास्फ़ोरस का १८·५० से १५·८६ f. f. m.। इन सब परीक्षाओं के आधार पर इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि फ़्लोरीन का परिणाम भिन्न-भिन्न है, अतः ये सब अस्थियाँ एक ही स्तर की नहीं हो सकतीं न एक ही अस्थिढेर के अंश हैं।

वम्बई के एस० जे० डी० मेडिकल कॉलेज के प्रो० कुरूलकर ने, जो मुझे सहयोग देते रहे हैं, कुछ अस्थियों के घनत्व की जाँच की। ऐसा उन्होंने इसलिए किया क्योंकि उन्होंने देखा कि अस्थियों में 'इम्प्रेग्नेशन' की मात्रा असमान है। उन्होंने वारह 'पेराइटल' हड्डियों की परीक्षा की और देखा कि उनका घनत्व २·८५ से १·३५ तक है। इस तथ्य को भूस्तर-ज्ञान की पर्याप्त जानकारी के अभाव में समझ सकना कठिन है, तथापि इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रूपकुण्ड में ये अस्थियाँ एक ही समय में जमा न हो कर विभिन्न समयों में जमा हुईं। 'कंट्रोल्स' की अपेक्षा जो अस्थियाँ अधिक घनत्व को प्राप्त कर चुकी हैं, वे 'फ़ॉसिल' वनने की क्रिया में मालूम होती हैं, और जिन अस्थियों का घनत्व कम है वे सम्भवतः वाद में जमा हुईं। प्रो० कुरूलकर का विचार है, और मैं उनसे पूर्णतया सहमत हूँ, कि कुछ खोपड़ियों की दरारों की अवस्था से यह पता लगता है कि कुछ लोगों, कम-से-कम दो लोगों, की खोपड़ियों पर आघात पहुँचे थे और वे लोग आहत होने के बाद कुछ देर तक अवश्य जीवित रहे थे।

रूपकुण्ड से प्राप्त मानवीय वालों की भी परीक्षायें की गईं। कुछ को देखने से स्पष्टतया तथा विशिष्ट रूप से यह पता लगता है कि उनकी जड़ें टेढ़ी हैं और वे कभी खोपड़ी पर 'ऑर्गेनिक टिस्यु' में गड़ी हुई थीं। इन वालों के जो अन्य स्लाइड तैयार किए गए उनमें इनकी जड़ों के छोटे-छोटे अवशेष ही मिले, और कुछ वालों के कैंची से कटे होने के चिह्न मिले। वालों के कुछ गुच्छों को देखा गया तो पता चला कि हर अलग-अलग बाल उलट-

पलट गया है, और कुछ बालों की जड़ें उस स्थान पर हैं जहाँ अन्य बालों के मुक्त सिरे हैं। इस प्रकार रूपकुण्ड में कैंची के कटे हुए और सही-सलामत जड़ों वाले दोनों प्रकार के बाल पाए गए हैं। इससे संभवतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये बाल दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों के ही हैं और किसी संस्कार की पूर्ति अथवा भेंट चढ़ाने के लिए ये काटे गए थे।

हमारे दल द्वारा रूपकुण्ड से लाई गई खोपड़ियाँ और अस्थियाँ सम्भवतः ६०-७० व्यक्तियों की हैं, यद्यपि बिलकुल ठीक संख्या बताना सम्भव नहीं है क्योंकि इनमें से अधिकांश खोपड़ियाँ और अन्य अस्थियाँ अपूर्ण हैं और यह भी नहीं कहा जा सकता कि एक व्यक्ति के समझे जाने वाले टुकड़े किसी अन्य व्यक्ति के नहीं हैं। लोगों के प्रजातीय सम्बन्ध को स्थिर करने के लिए अभी तक दो सबसे महत्वपूर्ण लक्षण, कद और खोपड़ी का आकार, उसकी लम्बाई और चौड़ाई, माने जाते हैं। किसी खोपड़ी की चौड़ाई उसकी लम्बाई का कितना प्रतिशत है इसे 'सिफेलिक इंडेक्स' कहते हैं। १६ खोपड़ियों में जो वयस्कों की विदित होती हैं, इसका पता लगाया जा सका है। औसत 'सिफेलिक इंडेक्स' ७४.२ है और इसमें ४.२८ तक का स्टैण्डर्ड व्यतिक्रम है। इस विषय में बहुत सतर्कता अपेक्षित है। हम जानते हैं कि कुछ खोपड़ियाँ अपूर्ण हैं। उन्हें अलग करने पर ११ खोपड़ियाँ बचती हैं जिनका औसत 'सिफेलिक इंडेक्स' ७४. है और स्टैण्डर्ड व्यतिक्रम २.५९।

उत्तरी अमेरिकन इंडियन मानव के ३५ सिरीज़ के 'सिफेलिक इंडेक्स' में औसत स्टैण्डर्ड व्यतिक्रम ३.३६ पाया गया और २१ मध्य एशियाई पुरुषों में यह औसत ३.७१ था। चूंकि किसी समान प्रजातीय समूह में औसत स्टैण्डर्ड व्यतिक्रम ३.७१ से अधिक नहीं होता, अतः २.५९ औसत स्टैण्डर्ड व्यतिक्रम वाले रूपकुण्ड में नष्ट हुए लोगों को एक प्रजातीय समूह का मानना चाहिए। निश्चित सिद्धान्तों को लागू कर लम्बी अस्थियों के अध्ययन से हम इन लोगों का कद बता सकते हैं। रूपकुण्ड के पुरुषों का औसत कद १७२.० सेण्टीमिटर (६७.७ इंच) है, जो भारत के किसी भी समूह के लिए काफी बड़ा है। १७२.० सेण्टीमीटर औसत कद और ७४.० 'सिफेलिक इंडेक्स' की तुलना जब समीपवर्ती क्षेत्रों के निवासियों के कद और 'सिफेलिक इंडेक्स' से की जाय तो प्रजातीय सम्बन्धों के विषय में कुछ निश्चित परिणाम निकलते हैं। प्रो० जी० एम० मोरण्ट, जो इस समय क्रेनियोमेट्री (खोपड़ी की नाप), ऑस्टियोमेट्री (अस्थियों की नाप) और ऐन्थ्रोपोमेट्री (जीवित मनुष्यों की नाप) के सबसे बड़े विशेषज्ञ हैं, मेरे इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि रूपकुण्ड के लोग प्रजातीय दृष्टि से एक थे और ३०० मील पश्चिमोत्तर स्थित ऊपरी स्वात के लोगों से बहुत दूर के नहीं थे। वे वास्तव में ऊपरी स्वात के कुछ लोगों, यथा तोरवालों से मिलते-जुलते हैं। कुछ खोपड़ियाँ और खोपड़ियों के टुकड़े एक भिन्न प्रजातीय उत्पत्ति की ओर इंगित करते हैं परन्तु इनमें से अधिकांश में खोपड़ी के पिछले भाग की हड्डी (ऑक्सिपिटल) पर असाधारण रूप से विकसित क्रैस्ट है। इस हड्डी का विशेष रूप से उभरा होना संकेत करता है कि ये हड्डियाँ उन बोझा ढोने वालों की हैं जो सिर पर बोझा ढो कर चलते थे जिसके कारण यह उभार बन गया। इनका आकार-प्रकार देखने से ऐसा लगता है कि ये भोटिया कुलियों की हैं यद्यपि इनकी संख्या बहुत कम है।

हर जीवित प्राणी में भार १४ वाले कारबन (कारबन १४) के 'रेडियोऐक्टिव आइसोटोप्स' के अति सूक्ष्म चिह्न पाये जाते हैं। यह रेडियोऐक्टिव कारबन प्रत्यक्ष या

अप्रत्यक्ष रूप से वायुमण्डल द्वारा तव प्राप्त होता है जब बहुत अधिक ऊँचाई पर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन के साथ कॉस्मिक किरण से उत्पन्न न्यूट्रान के टकराने से रेडियोऐक्टिव कारवन वनता है।

रासायनिक दृष्टि से कारवन १४ का साधारण कारवन से भेद नहीं कर सकते। फलतः यदि किसी जीवित प्राणी (उदाहरणार्थ पौदे) से कारवन निकाला जाय तो उसमें उसके अन्दर स्थित कारवन १४ के कारण बहुत कम ही रेडियोऐक्टिविटी देखने को मिलेगी। कुछ सीमाओं के अन्दर सभी जीवित पदार्थों में यह रेडियोऐक्टिविटी स्थायी रहती है और सहस्रों वर्षों से स्थायी रही है। निष्क्रिय रहने पर कारवन १४ का 'अर्द्ध-जीवन' लगभग ५,६०० वर्ष है। इसका अर्थ है कि हमारे पास यदि कारवन १४ कुछ मात्रा में इस समय हो तो ५,६०० वर्ष के वाद उसका आधा अंश शेष रहेगा।

जीवित प्राणियों के मरने पर वह प्रक्रिया जिसके द्वारा वे वायुमण्डल से अपने कारवन अणुओं को वदलते हैं वन्द हो जाती है, उनके अंदर कारवन १४ और साधारण कारवन का अनुपात स्थिर नहीं रह जाता, और (अनुपात) विनाश की निश्चित गति के अनुसार कम होता जाता है। अतः मृत प्राणि-पदार्थों से निकाले गए कारवन की रेडियोऐक्टिविटी से उस काल का पता लगाया जा सकता है जब यह जीवित प्राणी का ही एक अंश था। रेडियोकारवन काल-निर्धारण विधि अवशिष्ट रेडियोऐक्टिविटी के नापे जाने पर आधारित है।

अंत में अस्थियों के काल पर विचार कर लें। जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, कारवन १४ काल-निर्धारण की सबसे पक्की विधि है। रूपकुण्ड से प्राप्त वस्तुओं का लगभग सही काल जानने के लिए हमने अस्थियों के नमूने मिशिगन विश्वविद्यालय की फिनिक्स स्मारक रेडियोकारवन प्रयोगशाला में भेज दिए। मिशिगन में ऐन आर्वर में स्थित मानव विज्ञान संग्राहालय के सञ्चालक प्रो० जे० बी० ग्रिफिन ने हमें परिणाम सूचित किया। रेडियोकारवन प्रयोगशाला के प्रो० एच० आर० केन ने काल-निर्धारण के हेतु अस्थियों की परीक्षा की और हमें सूचित किया कि ये नमूने बहुत अच्छे थे और परीक्षा के परिणाम बराबर एक ही निकले, फलतः निर्धारित काल सही होना चाहिए। रेडियोकारवन परीक्षा से ज्ञात हुआ कि अस्थियाँ ६५० वर्ष पुरानी हैं। इस काल में इधर या उधर अधिक से अधिक १५० वर्षों का हेरफेर सम्भव है।

इस परिणाम से अधिकांश मत गलत सिद्ध हो जाते हैं, विशेष रूप से जोरावर सिंह सम्बन्धी मत। तीर्थयात्री मत, विशेष रूप से राजा जसदल से सम्बन्धित, भी मानना कठिन है क्योंकि (१) इनका प्रजातीय सम्बन्ध ऊपरी स्वात और हुंजा घाटी, पश्चिमोत्तर भारत के लोगों से है न कि स्थानीय मंगोल प्रजाति के लोगों से। कन्नौजवासियों की वात भी निराधार ही है क्योंकि रूपकुण्ड के लोगों का कद ऊँचा था, औसतन ६७ इंच या ५' ७", जो उत्तर प्रदेश के मध्य में नहीं पाया जाता। रक्तसमूह का प्रमाण भी कन्नौज के लोगों का न होना सिद्ध करता है। (२) तीर्थयात्री चप्पल या स्लिपर पहन कर नहीं जाते। इनकी वनावट और आकार भी ऐसे हैं जो प्रायः उत्तर प्रदेश के जिलों में देखने को नहीं मिलते। (३) हमने जिन तम्बुओं और उपकरणों की खोज की है उनसे भी राजा जसदल का कैलाश की तीर्थयात्रा वाला मत त्रुटिपूर्ण सिद्ध होता है।

परिणाम—हमारे अंतिम परिणाम ये हैं:

१—अस्थियां ६५० वर्ष पुरानी हैं। इस काल में इधर या उधर १५० वर्षों का हेरफेर सम्भव है।

२—अस्थियों से पता चलता है कि रूपकुण्ड दुर्घटना के शिकार व्यक्ति एक समान प्रजातीय प्रकार के थे और वे पश्चिमोत्तर भारत के लोगों, स्वात और हुंजा घाटी के लोगों से मिलते-जुलते थे।

३—अधिकांश हड्डियाँ स्थानीय लोगों, भोटियों और गढ़वालियों से किसी प्रकार की उत्पत्ति-सम्बन्धी समानता व्यक्त नहीं करतीं।

४—कुछ खोपड़ियाँ, जिनके पिछले भाग पर असाधारण रूप से उभरा हुआ क्रैस्ट है, सम्भवतः बोझा ढोने वालों की थीं जो भोटिया हो सकते हैं।

५—कुछ लोगों की खोपड़ियों पर चोटें आई परन्तु आघात के उपरान्त वे कुछ काल तक जीवित रहने के बाद मरे।

६—बालों की परीक्षा से ज्ञात हुआ कि कुछ बाल कैंची से कटे हुए थे और सम्भवतः पूजा में भेंटस्वरूप वे झील में डाल दिए गए थे।

७—फ़्लोरीन परीक्षण, बालों की रचना के अन्तर, आपेक्षिक घनत्व परीक्षण तथा यह तथ्य कि कुछ अस्थियों में मांस चिपका हुआ था और कुछ में विभिन्न मात्रा में 'इम्प्रेग्नेशन' हो चुका था, ये सारी बातें इंगित करती हैं कि सभी अस्थियाँ पृथ्वी की एक स्तर की ही नहीं हैं, तथा उन अस्थियों के जिनमें बहुत अधिक 'इम्प्रेग्नेशन' हो चुका है और उनके जिनसे मांस चिपका हुआ था, बीच कुछ काल अवश्य बीता होगा।

इन सब बातों और वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर प्रतीत होता है कि रूपकुण्ड दुर्घटना के शिकार भारत के पश्चिमोत्तर भाग के निवासी थे, वे लगभग ६०० वर्ष पूर्व नष्ट हुए, वे एक समान प्रजातीय समूह के रहे होंगे, सम्भवतः वे किसी आक्रमणकारी सेना के सैनिक थे, उन्हें तिब्बत के अभियान में प्रतिकूल ऋतु का सामना करना पड़ा और प्राकृतिक आपदाओं ने उन्हें समाप्त कर दिया। मेरा विचार है कि जो अस्थियाँ हमें मिली हैं वे उस अस्थिराशि का एक अंश मात्र हैं जो झील में बड़े पत्थरों के नीचे दबी पड़ी है। जब तक हम इन सभी अस्थियों को बाहर न निकालें, अंतिम रूप से कोई मत व्यक्त करना असम्भव है। इस सम्बन्ध में हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि लगभग ६०० वर्ष पूर्व मोहम्मद तुग़लक़ ने एक सैन्यदल तिब्बत भेजा था और वह प्राकृतिक विपत्तियों में फँस कर तिब्बत के मार्ग के दर्रों में समाप्त हो गया था। हम इस सम्भावना की भी अवहेलना नहीं कर सकते कि अस्थियाँ विभिन्न कालों की हैं। विभिन्न स्तरों में विभिन्न कालों की अस्थियाँ पाई जाती हैं, परन्तु हाल के मृत व्यक्तियों की अस्थियों ने प्राचीन काल की अस्थियों से मिल कर रूपकुण्ड के रहस्य को जन्म दिया है। शस्त्रों का अभाव विशेष महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि हर लड़ाई-झगड़े के बाद विजेता शस्त्रों को उठा ले जाते हैं। स्त्रियों का पाया जाना भी समझाया जा सकता है। सेनायें भी साथ में स्त्रियों को ले जाती हैं।

मुद्रक :—नवज्योति प्रेस, पानदरीबा, चारबाग, लखनऊ। फ़ोन : ३६४९